पेरिस
फरवरी १२, २००८

सन्देश संख्या १३४

सच्चे एवं विनम्र ब्राजील–निवासी भक्त को पत्र

लम्बे अन्तराल के बाद तुम्हारा पत्र पाकर बहुत आनन्द हुआ ।

शिवेन्दु के शरीर से जो समझदारी की ऊर्जा प्रवाहित हो रही है, उसे अपनी मानसिक आपाधापी में व्यस्त रहने के कारण श्रोताओं द्वारा शायद ही समझा जाता है । यदि बुद्धि यह नहीं समझती कि ''मैं'' लोभ, भय, अनुमानों, विरोधाभासों एवं पूर्वाग्रहों जैसे मानसिक प्रदूषणों के क्षेत्र से अर्थात् चित्तवृत्ति से प्रक्षेपित एक भ्रांति मात्र है, तब तक क्रिया–अभ्यास से कोई सहायता नहीं मिलती । चित्तवृत्ति में मिथ्या विभाजन की पद्धति से इन प्रदूषणों की रक्षा होती है तथा उन्हें स्थायीत्व भी प्रदान किया जाता है और इसी कारण चित्तवृत्ति के मूलभूत अवयवों से ''मैं'' सर्वथा पृथक और भिन्न प्रतीत होता है । उसके बाद ''मैं'' जितना ज्यादा प्रबल होता है, चित्तवृत्ति में प्रदूषणों का विस्तार भी उतना ही ज्यादा होता है । और फिर, जितना प्रदूषण बढ़ता है, उसी अनुपात में ''मैं'' भी ज्यादा मजबूत होता जाता है । इस तरह सम्पूर्ण जीवन द्वैत के अन्धकार में व्यर्थ हो जाता है ।

बाहरी दुनिया में द्वैत है । तुम एक कार की इच्छा कर सकते हों क्योंकि तुम्हारा शरीर कर्त्ता है और कार कर्म । यहाँ इच्छा करने वाला और इच्छित वस्तु दोनों भिन्न है । किन्तु जब ''मैं'' अपने अनुबन्धनों एवं संस्कारों के प्रभाव में ''ईश्वर'' की प्राप्ति की इच्छा करता है तब यह इच्छा करने वाला ही इच्छित है । यहाँ कर्त्ता और कर्म एक ही है । विश्वास पद्धतियों के माध्यम से सन्तुष्टि चाहना भ्रांति ''मैं'' की आत्मसंरक्षी यन्त्ररचना है । किसी भी प्रकार का चाहना लोभ है और ''ईश्वर'' की आकांक्षा चरम लोभ है । ''मैं'' ही लोभ है । ''मैं'' और लोभ दो भिन्न नहीं हैं । जब इस वास्तविकता की समझ हो जाती है तब चित्तवृत्ति में तत्काल उत्परिवर्त्तन (मौलिक रूपान्तरण) हो जाता है और तब न ''मैं'' रहता है और न ही लोभ ।

यदि तुम्हारे शरीर में क्रिया हुई होती तब तुम किसी प्रकार की कहानी–चाहे वह वंश–परम्परा की हो या किसी अन्य परम्परा की, जानने की इच्छा नहीं रखते । मानसिक प्रदूषणों (जो चाहने से प्रारम्भ होते हैं) से मुक्ति ही तब तुम्हारी प्राथमिकता होती । मेरे लिए यह कहना निर्लज्जता एवं अभद्रता की बात होगी कि जो मेरे पूर्वजों के नाम तले क्रियायोग का व्यापार करते हैं वे आध्यात्मिक मंडी के सफल व्यापारी होते हैं । ईश्वर को धन्यवाद है कि तुम अभी तक एक ही (अशोक चटर्जी) से मिले हो । कई और भी हैं, जैसे कि प्रकाश व्यास (जो हाल ही में क्रियायोग–व्यापार के विस्तार के लिए ऑस्ट्रेलिया गया है), शैलेन्द्र शर्मा, शिवनारायण लाल इत्यादि । मैं तुम्हें सलाह दूँगा कि तुम अपने विभेदकारी चित्त ''मैं'' के मनोरंजन में वृद्धि तथा अपनी इच्छाओं की सन्तुष्टि हेतु इनके पास भी जाओ । श्रद्धा ''निर्मना'' की अवस्था में होती है जबकि तुम अपनी क्रियाओं के बावजूद केवल मन ही मन हो । तुम्हारे शरीर में यह त्रासदी है । विश्वास और संशय–दोनों एक दूसरे के विपरीत हैं तथा वे मन और उसकी शरारत के साथ होते हैं । श्रद्धा का कोई विपरीत नहीं है ।

वंश–परम्परा में समझदारी की जो पवित्र ऊर्जा है, उसे तुम्हारे तथाकथित ''श्रद्धा'' की जरूरत नहीं है । चाहने–पाने की आपाधापी और अपने शरीर में मानसिक प्रदूषणों की वृद्धि के लिए तुम ''मुक्त'' हो ।

।। जय श्रद्धा ।।